गिल्बर्ट राइल
(Gilbert Ryle)
(1900-1976)

जीवन परिचय :—

गिल्बर्ट राइल का जन्म सन् 1900 में ब्राइटन (Brighton) में हुआ था। ब्राइटन कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे 1919 में ऑक्सफॉर्ड गये। एच.जे. पेटन (H.J. Paton) राइल के शिक्षक रहे, उनसे उन्होंने इटालीयन दर्शन की मुख्यतः क्रोचे एवं जेन्टले के दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। बर्ट्रेण्ड रसल की पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ मैथामेटिक्स' ने सम्पूर्ण समकालीन दार्शनिकों को प्रभावित किया था। रसल की इस कृति से दार्शनिकों को चिन्तन करने के लिए एक नया आयाम मिला था। राइल स्वयं रसल से प्रभावित रहे। राइल ने जर्मन भाषा को सीखा कर हुसर्ल की पुस्तक (Logische untersuehungen) का गहन अध्ययन किया था। दर्शन के क्षेत्र में राइल की पुस्तक 'द कॉनसेप्ट ऑफ माइण्ड' न केवल प्रसिद्ध पुस्तक है अपितु इस पुस्तक का दर्शन के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। राइल ने कई दार्शनिक लेख प्रकाशित किये जिनमें से निःसन्देह सभी महत्वपूर्ण हैं, तथापि निगेशन, आर देयर प्रॉपोजिशन्स? डायलेमा, सिसटेमेटिकलि मिसलीडिंग एक्सप्रेशन्स, द थियोरी ऑफ मीनइग यूज सूजेस एण्ड मीनिंग फिलोसॉफिकल आरग्यूमॅण्ट इत्यादि उल्लेखनीय हैं। उनके प्रायः सभी लेखों को सम्मिलित रूप से 'कलक्टेड पेपर्स ऑफ गिलबर्ट राइल' नाम से दो भागों में प्रकाशित किया गया है। अक्टूबर 1976 में 76 वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हुआ।

राइल विश्लेषणवादी पद्धति से अत्यधिक प्रभावित थे। उनका स्थान विश्लेषणवादी दार्शनिकों में प्रमुख है। राइल ने बर्ट्रेण्ड रसल, जी.ई. मूर, विट्गेनस्टाइन जैसे विश्लेषणवादी दार्शनिकों की परम्परा का निर्वाह किया परन्तु साथ ही जहाँ पर वे इनके विचारों से सहमत नहीं हो पाये, उन्होंने ऐसी अवधारणाओं का खण्डन भी

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

किया। राइल की कृति 'कॉनसेप्ट ऑफ माइण्ड' को कुछ आलोचकों ने केवल खण्डनात्मक माना है, परन्तु यह सही नहीं है। उनकी पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, प्रथम खण्डनात्मक एवं द्वितीय मण्डनात्मक है। राइल ने इस पुस्तक में देकार्त के मनस एवं जड़ के संबंध का खण्डन किया है। उनकी यह पुस्तक दर्शन के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण योगदान मानी जाती है। इसमें राइल का मुख्य ध्येयः निःसन्देह देकार्त द्वारा प्रतिपादित द्वैतवाद का खण्डन रहा परन्तु इसके साथ ही साथ उन्होंने ज्ञान की समस्या और दर्शन की अवधारणा जैसे गहन विषयों पर भी प्रकाश डाला है। दार्शनिक समस्याओं के समाधान के लिए उन्होंने एक नई चिन्तनधारा प्रस्तुत की। राइल के अनुसार इस पुस्तक का उद्देश्य यह बताना नहीं है कि मनस के संबंध में हम क्या जानते हैं अपितु ज्ञान के संबंध में एक तार्किक भौगोलिक सीमा का निर्धारण करना है।* अतः जो आक्षेप उन पर लगाये गये हैं वे आधारहीन हैं। वास्तव में जिस समय राइल की यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, इसे तात्कालिक विद्वानों के द्वारा आदर के साथ ग्रहण नहीं किया गया था। इसके कई कारण हो सकते हैं, पर एक बहुत महत्वपूर्ण कारण यह रहा कि उनकी विश्लेषणात्मक शैली बहुत से विचारकों के लिए बुद्धिगम्य नहीं थी।

राइल कहते हैं कि वस्तुतः शिक्षक एवं परीक्षक, दण्डनात्मक एवं आलोचक, इतिहासकार एवं साहित्यिक सभी बहुत अच्छे से अपनी-अपनी दैनिक वस्तु स्थिति के संबंध में जानते एवं समझते हैं, न केवल इतना अपितु वे यह भी बहुत अच्छे से जानते हैं कि यदि वे गलत हैं तो किस प्रकार वे अपने को सुधार सकते हैं। राइल कहते हैं कि ऐसे भी लोग होते हैं जो भावपूर्ण बात संकल्पना के साथ कर सकते हैं परन्तु उनके भाव को स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। वे यह जानते हैं कि संकल्पना को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है, परन्तु वे संकल्पना के नियंत्रण के लिए तार्किक नियम एवं संरचना को नहीं जानते हैं। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि ऐसे लोग अपनी समस्याओं से बहुत अच्छे से परिचित रहते हैं परन्तु उनका समाधान तार्किक रूप से कैसे किया जा सकता है यह नहीं जानते।

जैसा कि उन्होंने **'द कॉनसैप्ट ऑफ माइण्ड'** की भूमिका में लिखा है कि यद्यपि पुस्तक में मनस के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, परन्तु इसमें मनस् के संबंध में कोई नई सूचना नहीं दी गई है, केवल मनस् के संबंध में हमारा जो ज्ञान है उसका एक तार्किक मानचित्र खींचा गया है। उनका कहना है कि इस पुस्तक में उन्होंने युक्तियों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि जो 'कोटि दोष' दर्शन के क्षेत्र में हैं उन्हें दूर करके उसे किस प्रकार सुव्यवस्थित किया जाए। दर्शन का कार्य है कि वह कोटिदोष को दूर करके उसे उचित कोटि में रखें।

---

* The Philosophical arguments which constitute this book are intended not to increase what we know about minds but to rectify the logical geography of the knowledge which we already posses. Gilbert Ryle, The concept of Mind. p. 7.

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

देकार्त के मन एवं शरीर के संबंध के सिद्धान्त को राइल मिथक कहते हैं। इसे राइल एक उपाख्यान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मानते हैं। उनकी यह भी मान्यता रही कि यह उपाख्यान उस प्रकार का नहीं है जैसा कि परी कथाओं में दिया रहता है। इसमें किसी विशेष तथ्य को स्पष्ट करने की चेष्टा अवश्य की गई है पर दुर्भाग्य से वह दोषपूर्ण हो गया है। राइल इस दोष को कोटिदोष कहते हैं। उनकी यह मान्यता है कि देकार्त ने अपने एक काल्पनिक दार्शनिक मत को विरासत के रूप में रख छोड़ा है जिसने सम्पूर्ण यूरोपीय मनस् के अवधारणा संबंधी मानचित्र को विकृत कर दिया है। अतः राइल कहते हैं कि इस पुस्तक का मुख्य ध्येय इस विकृत मानचित्र को कोटिदोष से मुक्त कर तार्किक ढँग से प्रस्तुत करना मात्र है। सामान्य व्यक्ति जिस प्रकार कोटिदोष करते हैं उसी प्रकार कभी-कभी दार्शनिक भी इस दोष से ग्रसित हो जाते हैं। अतः दर्शन का कार्य है कि वे ऐसे दार्शनिकों को दोष मुक्त करे।

कोटिदोष :—

राइल 'देकार्त की मिथक' का खण्डन करते हुए कहते हैं, मनस् की प्रकृति एवं उनका स्थान इस संबंध में जो सिद्धान्त है उसे सामान्य व्यक्ति 'अधिकारिक सिद्धान्त' (Official doctrine) के रूप में जानते हैं। यह 'अधिकारिक सिद्धान्त' जिसकी अभिव्यंजना करते हुए देकार्त ने स्पष्ट किया था कि मूर्खों एवं बच्चों के सन्देहास्पद अपवाद के साथ प्रत्येक मनुष्य के पास शरीर एवं मन दोनों है। कुछ लोग इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मनुष्य मन एवं शरीर दोनों हैं। मानव के मन एवं शरीर सामान्यतः एक साथ कार्य करते हैं, परन्तु शरीर की मृत्यु हो जाने के पश्चात् मन का अस्तित्व रहता है और वह क्रियाशील रहता है। मानव शरीर देश में हैं और शरीर का सारभूत गुण विस्तार है अतः शरीर या जड़ वस्तु स्थान घेरती हैं। शारीरिक क्रियाओं का अवलोकन किया जा सकता है। अतः मानव का शारीरिक जीवन अधिक सार्वजनिक है। जैसे कि पशुओं, मेरूदण्डविहीन जीवों, वृक्ष की प्रगति, ग्रह, नक्षत्रों की गति को जिस प्रकार सार्वजनिक अवलोकन के द्वारा जाना जा सकता है, ठीक उसी प्रकार मानव की शारीरिक क्रिया को अवलोकन के द्वारा जाना जा सकता है। इसके विपरीत मनस् देश में नहीं होता है। मनस् शरीर के समान स्थान नहीं घेरता है। मनस् का सारभूत गुण विचार है। मानसिक क्रिया शारीरिक क्रिया जैसे यांत्रिक नियमों पर आधारित नहीं है। मानसिक प्रगति व्यक्तिगत है। सहज बोध के द्वारा हम अपने मन को जान सकते हैं। अतः व्यक्ति के जीवन के दो समानान्तर इतिहास हैं जिसके बीच वह जीता है, मानव का मन एवं मानसिक क्रियाओं का एक पक्ष सार्वजनिक है दूसरा पक्ष व्यक्तिगत है। प्रथम स्तर की घटनाएँ भौतिक जगत की घटनाएँ हैं एवं दूसरे स्तर की घटनाएँ मानसिक जगत की घटनाएँ हैं। साधारणतः मानव जीवन जो दो पाटों में विभाजित है एवं दो जगत

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

को क्रमशः बाह्य पक्ष एवं आन्तरिक पक्ष कहा जाता है। भौतिक जगत की घटनाएँ एवं व्यक्ति की भौतिक क्रियाएँ बाह्य कहलाती हैं। व्यक्ति की मानसिक जगत की घटनाएँ एवं मानसिक क्रियाएँ आन्तरिक कहलाती हैं। यह बाह्य एवं आन्तरिक पक्ष एवं उनका परस्पर संबंध एक रूपक प्रस्तुत करता है। इससे दर्शन के क्षेत्र में अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं। यदि मनस् एवं शरीर एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं, विपरीत हैं, एक आन्तरिक है एवं दूसरा बाह्य है तो ये किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं? या दूसरे शब्दों में इनके बीच क्रिया प्रतिक्रिया किस प्रकार सम्भव होती है? यह एक सैद्धान्तिक समस्या के रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। मन जो इच्छा करता है, मानव का शरीर या शारीरिक अंग जैसे हाथ, पैर इत्यादि उसे क्रियान्वित करते हैं। वास्तव में यह समस्या एक रहस्यात्मक समस्या के रूप में उपस्थित होती है। मानव का मन जो आन्तरिक है एवं शरीर जो बाह्य है इनके बीच के संबंध को किसी भी एक पक्ष को स्वीकार करके परिभाषित नहीं किया जा सकता है। मन एवं शरीर परस्पर एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते हैं यह न तो अवलोकन, निरीक्षण के द्वारा जाना जाता है और न ही प्रयोगशाला में परीक्षण के द्वारा जाना जा सकता है। राइल इस प्रकार के सिद्धान्तों की तुलना 'शटल कॉक' से करते हुए कहते हैं कि सदैव इस प्रकार के सिद्धान्त शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान के बीच एवं पुनः मनोविज्ञान से शरीर विज्ञान के बीच उछलते रहते हैं।

राइल कहते हैं कि जिस प्रकार मानव जीवन के संबंध में रूपकात्मक ढँग से यह कहा जाता है कि मानव जीवन दो भागों में विभाजित रहता है, उसी प्रकार दर्शन में भी बहुत प्रसिद्ध सिद्धान्त इस संबंध में है। कुछ दार्शनिक यह स्वीकार करते हैं कि दो भिन्न प्रकार की सत्ता है, जिन्हें क्रमशः भौतिक सत्ता एवं मानसिक सत्ता कहा जाता है। जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते हैं, जैसे यह माना जाता है कि व्यक्ति या तो स्त्री है या पुरुष, वैसे ही यह माना जाता है कि कुछ सत्ता भौतिक होती है एवं कुछ मानसिक। यह अनिवार्य सारभूत गुण के रूप में स्वीकार किया जाता है कि भौतिक सत्ता देश में है या भौतिक क्रिया है। मानसिक सत्ता यह चेतना का योग है या चेतना की क्रिया है। इससे स्पष्ट होता है कि मन एवं शरीर एक दूसरे से सर्वथा भिन्न सत्ता है। जब दार्शनिक मन एवं शरीर के संबंध की सैद्धान्तिक व्याख्या करते हैं तब उनका सिद्धान्त अतार्किक एवं असंगत हो जाता है। राइल कहते हैं कि उन्होंने स्वेच्छा से इस सिद्धान्त का नाम 'यंत्र के अन्दर प्रेत का मत' रखा है। यह सिद्धान्त मिथक है एवं दर्शन के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी गलती है जिसे एक विशिष्ट प्रकार की गलती कहा जा सकता है। यह विशिष्ट प्रकार की गलती 'कोटिदोष' कहलाता है। कोटिदोष से राइल का तात्पर्य है कि यह सिद्धान्त मनस् को एक ऐसे तार्किक कोटि के रूप में प्रस्तुत करते हैं

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

जिस कोटि में उसे तार्किक रूप से रखा ही नहीं जा सकता है। अतः इस प्रकार का सिद्धान्त दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित एक उपाख्यान या मिथक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। राइल कहते हैं कि उनका उद्देश्य इस दोष को दूर करके मानसिक अवधारणा के लिए उचित तार्किक मानचित्र का निर्माण करना है।

'कोटिदोष' इस वाक्यांश के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए राइल कई रोचक उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि कोटिदोष क्या है, इस ओर संकेत करने के लिए कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करना आवश्यक है। द कॉनसैप्ट ऑफ माइंड में एक उदाहरण को प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कोई विदेशी व्यक्ति ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय देखना चाहता है। वह विश्वविद्यालय देखने जाता है तो उसे विश्वविद्यालय से संबंधित सभी महाविद्यालय को दिखाया जाता है, वह पुस्तकालय देखता है, खेल का मैदान देखता है, प्रयोगशाला देखता है, विज्ञान संकाय, प्रशासनिक विभाग, कार्यालय, सब देखता है और उसके बाद पूछता है कि विश्वविद्यालय कहाँ है? वह कहता है मैंने महाविद्यालय एवं अन्य विभाग देखे, मैंने देखा कि कुलसचिव कहाँ कार्य करता है उसका कार्यालय देखा परन्तु मैंने विश्वविद्यालय नहीं देखा। वास्तव में उसने जो कुछ देखा वह विश्वविद्यालय ही है। परन्तु वह ऐसा सोचता है कि विश्वविद्यालय इन सबसे पृथक कोई वर्ग है जिसकी ये सब इकाईयाँ हैं। राइल कहते हैं कि यहाँ पर वह व्यक्ति कोटिदोष करता है। वह गलती से विश्वविद्यालय को एक ऐसी इकाई के रूप में सोचता है जैसे अन्य संस्थाएँ जो विश्वविद्यालय की विभिन्न इकाईयाँ होती हैं। राइल कहते हैं कि इसी प्रकार की गलती बच्चे भी करते हैं। जब बच्चा किसी सेना वाहिनी की परेड को देखने जाता है तो वह सेना की भिन्न-भिन्न टुकड़ियों को तथा तोपगाड़ी आदि सबको सामने से जाते हुए देखता है। यह सब देखने के उपरान्त वह पूछता है कि सेना वाहिनी कब दिखेगी? वह सोचता है कि सेना वाहिनी इनके समान एक अलग इकाई होगी जो या तो इनके समान या इनसे भी कुछ भिन्न होगी। परेड को देख लेने के पश्चात् जब वह बच्चा पूछता है कि परेड तो देखी पर सेना वाहिनी नहीं देखी, तब वह यही गलती करता है। वास्तव में वाहिनी का प्रदर्शन टुकड़ियों, तोपगाड़ी एवं विभिन्न संगठित दल के समान पृथक कोई इकाई नहीं है परन्तु इन्हीं का सम्मिलित रूप है। राइल ने इस दोष को स्पष्ट करने के लिए एक और उदाहरण प्रस्तुत किया है। कोई विदेशी व्यक्ति पहली बार क्रिकेट के खेल को देखकर सीखता है कि गेंदबाजों का क्या अर्थ है? बल्लेबाज का काम क्या है? क्षेत्ररक्षण किस प्रकार किया जाता है? निर्णायक एवं अंकतालिका के निर्धारण कर्त्ता का क्या काम है? तत्पश्चात वह कहता है कि 'परन्तु खेल के मैदान में ऐसा कोई भी नहीं था जो उसके प्रसिद्ध घटक खेल भावना का योगदान करें। मैंने देखा कि कौन गेंद फेंक रहा है, बल्लेबाजी एवं विकेट कीपर का कार्य भार कौन सम्भाल

Scanned by TapScanner

रहा है, परन्तु यह नहीं देख सका कि खेल भावना का प्रदर्शन करना किसका कार्य हैं यहाँ फिर से यह देखा जा सकता है कि वह गलत ढँग से इसे देख रहा है। खेल भावना कोई भिन्न प्रकार की क्रिकेट कार्यवाही नहीं है जैसे कि उसने दूसरे कार्य देखे। मोटे तौर पर उत्साह के साथ किसी विशेष कार्य का सम्पादन करना एवं कार्य को उत्साह के साथ करना दो कार्य नहीं हैं। निश्चित रूप से खेल भावना का प्रदर्शन करना बल्लेबाजी करना या गेंद जैसा नहीं है, परन्तु न तो यह कोई तीसरी वस्तु ही है जिसे इस प्रकार कहा जाए गेंदबाज पहले गेंदबाजी करता है और तत्पश्चात् वह खेल भावना का प्रदर्शन करता है। कोटिदोष के जो दृष्टान्त राइल ने प्रस्तुत किये उनमें ध्यान देने योग्य एक विशेष बिन्दु है जो प्रत्येक उदाहरण में सामान्य रूप से स्पष्ट परिलक्षित होता है। राइल कहते हैं कि सामान्यतः लोग इस प्रकार के दोष तब करते हैं जब वे किसी अवधारणा का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है यह न जानते हों जैसे कि विश्वविद्यालय, वाहिनी एवं खेलभावना के संबंध में देखा गया। उनकी भ्रान्ति का कारण भाषा का अनुचित प्रयोग है।

सैद्धान्तिक कोटिदोष के भी रोचक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए राइल कहते हैं कि इस प्रकार का दोष प्रायः उन लोगों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो किसी भी अवधारणा का प्रयोग कम से कम ऐसी स्थिति में करने में निपुण होते हैं जिस स्थिति से वे परिचित होते हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त वे अपने अमूर्त विचारों को उन तार्किक ढँग की अवधारणाओं से जोड़ते हैं जिस श्रेणी में वे आते ही नहीं है। उदाहरण के लिए एक राजनीति शास्त्र का विद्यार्थी इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं अमेरिका के संविधान के मध्य भेद को जानता है और वह संसद, मंत्री मण्डल, विधानसभा, न्यायालय, इंग्लैण्ड का चर्च इत्यादि के मध्य क्या संबंध है इसे भी जानता है। परन्तु उसे भी तब एक अद्भुत स्थिति का सामना करना पड़ता है जब यह पूछा जाता है कि इंग्लैण्ड के चर्च एवं गृह मंत्रालय के बीच क्या संबंध है। राइल इन उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि इसमें हम उस प्रेत को खोजना चाहते हैं जो सर्वत्र उपस्थित है परन्तु कहीं भी नहीं है।

राइल कहते हैं कि उनके खण्डनात्मक पक्ष का उद्देश्य स्पष्ट रूप से यह दर्शाना है कि कोटिदोष के समस्त सदस्य मानव जीवन को दो भागों में विभाजित करते हैं, मन एवं शरीर के बीच के सिद्धान्त का मुख्य स्त्रोत भी यही है। इस प्रकार के सिद्धान्त के प्रतिपादकों की युक्ति से यह स्पष्ट होता है कि प्रेत रहस्यात्मक ढँग से यंत्र के अन्दर उपस्थित रहता है। निःसन्देह मानव के विचार भावना एवं सोद्देश्य कार्य पूर्णतः भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र एवं शरीरशास्त्र की शब्दावली में नहीं समझाए जा सकते। अतः इसे स्पष्ट करने के लिए इनसे भिन्न किसी शब्दावली की आवश्यकता है जिससे इसे समझाया जा सके। मानव का शरीर जिस प्रकार एक संयोजित जटिल इकाई है, उसी प्रकार मानव का मस्तिष्क

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

भी भिन्न प्रकार का संयोजित जटिल इकाई है। दोनों अलग-अलग प्रकार के उपादान एवं संरचनाएँ हैं या जिस प्रकार मानव शरीर अन्य भौतिक वस्तुओं के समान कार्यकारण का क्षेत्र है उसी प्रकार मनस् एक और कार्य एवं कारण का क्षेत्र है, यद्यपि यह यांत्रिक कार्य कारण नहीं है।

राइल के अनुसार सामान्य व्यक्ति एवं दार्शनिक दोनों ही कभी-कभी कोटिदोष के शिकार होते हैं। देकार्त के दर्शन में यह दोष उत्पन्न होने का एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। देकार्त के दार्शनिक विचारों पर विज्ञान एवं धर्म का समान प्रभाव रहा। वे गैलीलियो की वैज्ञानिक पद्धति से अत्यधिक प्रभावित रहे। गैलीलियो की मान्यता थी कि वैज्ञानिक पद्धति प्रत्येक भौतिक वस्तु को यांत्रिक नियमों के से समझने में समर्थ है। देकार्त गैलीलियों के इस कथन को अस्वीकार नहीं कर पाएँ। दूसरी तरफ उन पर धार्मिक एवं नैतिक विचारों का भी प्रभाव रहा। कदाचित यही कारण है कि वे मानव प्रवृत्ति को अस्वीकार नहीं कर पायें। वे मानव में भौतिक एवं मानसिक दोनों पक्षों को स्वीकार करते हैं और जब भौतिक पक्ष एवं मानसिक पक्ष के संबंध को स्पष्ट करते हैं तो वह दोषपूर्ण हो जाता है। देकार्त की स्थिति भी उस विदेशी की तरह होती है जो विश्वविद्यालय को उसकी प्रत्येक इकाई से पृथक एक अलग सदस्य मानता है। मन एवं शरीर की क्रिया-प्रतिक्रिया के संबंध को देकार्त ने समझाने का प्रयास अवश्य किया परन्तु इस प्रयास में राइल कहते हैं कि देकार्त मानव एवं यांत्रिक मानव के भेद को स्पष्ट नहीं कर पाये एवं उनका सिद्धान्त अर्ध-यांत्रिक प्राक्कल्पना बनकर रह गया। भौतिक एवं मानसिक द्वैत को केवल देकार्त स्वीकार करते हैं ऐसा नहीं है। अनेक विचारकों ने इस प्रकार के द्वैतवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। समस्त दार्शनिक विचार जो द्वैतवादी सिद्धान्त पर आधारित हैं कोटिदोष से मुक्त नहीं है। ऐसे विचारक भौतिक एवं मानसिक पक्ष को एक सामान्य ढाँचे में प्रस्तुत करते हैं। उनकी मान्यता है कि मन वस्तु तो है पर वह भौतिक वस्तु नहीं है अपितु उससे भिन्न एक विशेष प्रकार की वस्तु है। मानसिक प्रक्रिया भी कार्यकारण की प्रक्रिया है परन्तु यह भौतिक कार्यकारण प्रक्रिया से भिन्न है। राइल कहते हैं कि इस प्रकार के सिद्धान्त भी अर्ध-यांत्रिक प्राक्कल्पनाएँ हैं। द्वैतवादी सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले दार्शनिकों के सामने प्रधान समस्या मन एवं शरीर के संबंध को लेकर उपस्थित होती है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मन जो शरीर से भिन्न है किस प्रकार शरीर को प्रभावित कर सकता है एवं इसके विपरीत मन शरीर से किस प्रकार प्रभावित होता है जो उससे भिन्न है? मन की इच्छा के अनुरूप शरीर किस प्रकार कार्य करता है? राइल कहते हैं कि जब इन प्रश्नों का समाधान करने के लिए ऐसे दार्शनिक अपने मत को प्रस्तुत करते हैं तो उनके मत कुछ इस प्रकार के लगते हैं या दूसरे शब्दों में इस कथन का प्रतिनिधित्व करते हैं, कि मन केवल प्रेत को काम पर नहीं लगाता अपितु मन स्वयं प्रेततुल्य है। ऐसे दार्शनिक मानव शरीर को एक यंत्र के समान तो मानते हैं,

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

परन्तु साथ ही साथ यह भी मानते हैं कि यह कोई साधारण यंत्र नहीं है इसकी कुछ गतिविधियाँ इसके अन्तर्गत जो यंत्र है उससे संचालित होती है। यह अन्तर्निहित यंत्र भी साधारण न होकर विशिष्ट प्रकार का है जो अदृश्य है, अश्रृव्य है, निराकार है, इसकी गतिविधियों को या जिन नियमों का यह पालन करता है उसे कोई साधारण अभियन्ता नहीं जान सकता है। वह इस शारीरिक यंत्र को किस प्रकार परिचालित करता है यह अज्ञात है। राइल कहते हैं कि इन विचारकों के समक्ष एक दूसरी कठिन समस्या तब उपस्थित होती है कारण इनकी मान्यता है कि मन उस कोटि में आता है जिस कोटि में जड़ आता है। कुछ विचारक यह स्वीकार करते हैं कि जिस प्रकार जड यांत्रिक नियमों से संचालित होता है उसी प्रकार मन भी अ-यांत्रिक नियमों से संचालित होता है। भौतिक जगत एक निर्धारित व्यवस्था है, अतः मानसिक जगत भी एक निर्धारित व्यवस्था होना चाहिए। जड़ में जो रूपान्तरण होते हैं उसमें जड़ कुछ नहीं कर सकता है अतः मन के जो स्तर निर्धारित कर दिये गये हैं उनके आगे वह कुछ नहीं कर सकता है। इस प्रकार के सिद्धान्त को स्वीकार करने वालों के समक्ष एक मुख्य समस्या संकल्प स्वातंत्र को समझाने की रहती है। राइल कहते हैं कि जब तक वे कोई समझौता पूर्ण निष्कर्ष यह कहकर नहीं निकालते हैं कि जो नियम मानसिक प्रक्रिया को परिचालित करते हैं वे उन नियमों के समान कठोर नहीं है जो भौतिक प्रक्रिया को संचालित करते हैं मानसिक नियम कठोर तो हैं पर इसके अतिरिक्त उनके पास अनुकूल गुण हैं वे उत्तरदायित्व, चुनाव, योग्यता एवं अयोग्यता जैसी मानसिक प्रक्रियाओं को नहीं समझ सकते हैं।

राइल कहते हैं कि यदि दर्शन के इतिहास को देखा जाए तो हम पाएँगे कि बहुत लम्बे समय तक इन गलतियों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वास्तव में ऐसे सिद्धान्तों के प्रतिपादक यह स्वीकार करते हैं कि कोई भी समझदार व्यक्ति बौद्धिक एवं अबौद्धिक के भेद को भली-भाँति समझता है। न केवल इतना वह यह भी समझता है कि उद्देश्यपूर्ण कार्य एवं स्वाभाविक कार्य में क्या भेद है? इसके लिए किसी यंत्र की गुलामी स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु जब ऐसे दार्शनिक सैद्धान्तिक रूप से इन समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करते हैं तो वे मानव को यांत्रिक मानव के रूप में बतलाते हैं। इस प्रकार के दोष का कारण उनकी व्याख्या में तार्किक असंगति है। यदि दो पद एक ही कोटि के हैं तो उनके बीच संयोजन संबंध हो सकता है। राइल इसे स्पष्ट करने के लिए एक रोचक उदाहरण देते हुए कहते हैं कि 'कोई भी क्रेता यह कह सकता है कि उसने एक बायें हाथ का दस्ताना खरीदा और एक दायें हाथ का दस्ताना खरीदा, परन्तु वह ऐसा नहीं कह सकता है कि उसने एक बायें हाथ का दस्ताना खरीदा और एक दायें हाथ का दस्ताना खरीदा और एक जोड़ा दस्ताना खरीदा। राइल कहते हैं कि द्वैतवादी सिद्धान्त 'यंत्र के अन्दर प्रेत' का सिद्धान्त है। द्वैतवादी यह स्वीकार करते है कि

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

जड़ एवं मन दोनों का अस्तित्व है। जिस प्रकार भौतिक प्रक्रिया या गतिविधियों का अस्तित्व है, उसी प्रकार मानसिक प्रक्रिया या गतिविधियों का अस्तित्व है। भौतिक गति भौतिक नियम के कारण है एवं मानसिक गति मानसिक कारण से है। राइल कहते हैं कि उनकी मान्यताओं को इस प्रकार से कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मानसिक प्रक्रिया होती ही नहीं है। उनका उद्देश्य सिर्फ यह बताना है कि जिस प्रकार के सादृश्यात्मक दृष्टान्त वे प्रस्तुत करते हैं वे सादृश्य नहीं है। 'मानसिक प्रक्रियाएँ हैं' यह वाक्यांश 'भौतिक प्रक्रियाएँ हैं' इस वाक्यांश के सादृश्य नहीं हैं, अतः इनके बीच न तो संयोजन संबंध हो सकता है और न ही वियोजन संबंध हो सकता है। राइल अपनी पुस्तक द कॉनसेप्ट ऑफ माइण्ड के प्रथम अध्याय के अन्त में निष्कर्ष के रूप में स्पष्ट करते हैं कि जो भी तर्क उन्होंने देकार्त के लिए प्रस्तुत किया है, यदि वे सफल हैं, तो कुछ अच्छे परिणाम हमारे सामने आते हैं। सर्वप्रथम मन एवं जड़ के विरोध एवं इनके बीच के संबंध से संबंधित जो विवाद था वह समाप्त हो जाता है। जैसे कि दर्शन के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि कई दार्शनिक इस विवाद को समाप्त करने के लिए एक और विरोध उत्पन्न करते हैं। मन एवं जड़ में से किसी एक को मानकर यह कहते हैं कि मन वास्तव में जड़ से भिन्न नहीं है, वह जड़ में समाहित है या जड़ मन से भिन्न नहीं है वह मन में समाहित है। परन्तु राइल का विचार मन एवं जड़ के संबंध में इनसे भिन्न है। उनके अनुसार यह विश्वास करना कि जड़ एवं मन के मध्य ध्रुवीय अन्तर है, यह विश्वास करना है कि वे एक ही प्रकार के तार्किक पद हैं। दूसरा, राइल कहते हैं कि प्रत्ययवाद एवं जड़वाद दोनों ही ऐसे प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करते हैं जो तार्किक रूप से असंगत है। जड़ जगत को मानसिक जगत में परिवर्तित करके एवं मानसिक जगत को जड़ जगत में परिवर्तित करके वास्तव में जड़ एवं मन की समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता है। ऐसा करने पर उनके सिद्धान्त में भी तार्किक असंगति का दोष अनायास उत्पन्न हो जाता है। राइल कहते हैं कि वे एक पूर्वमान्यता से ग्रसित होकर जड़ और मन को एक दूसरे में परिवर्तित करते हैं। वे जड़ एवं मन को एक वियोजन के रूप में स्वीकार करते हैं। वियोजन का संबंध सबल अर्थ में एवं निर्बल अर्थ में दोनों प्रकार से हो सकता है पर ऐसा ये विचारक केवल वियोजन को सबल अर्थ में लेते हुए कहते हैं 'या तो मन का अस्तित्व है या जड़ का अस्तित्व है, दोनों का नहीं।' राइल कहते हैं कि ऐसा कहना बिलकुल उसी प्रकार का कथन है जैसे ये कहना कि 'या तो उसने बायें हाथ का दस्ताना एवं दायें हाथ का दस्ताना खरीदा या जोड़ा खरीदा दोनों नहीं। राइल के अनुसार तार्किक रूप से यह कहना कि मन का अस्तित्व हैं एवं जड़ का अस्तित्व है पूर्णतः उचित है। इस प्रकार यदि कहा जाए तो ऐसी अभिव्यक्तियों से यह नहीं लगना चाहिए कि ये दो भिन्न अस्तित्व की जातियों के संबंध में संकेत कर रही हैं। वास्तव में यहाँ पर अस्तित्व का अर्थ उस प्रकार से नहीं लिया जा रहा है जैसे रंग, वस्तु, पेड़-

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

पौधों का अस्तित्व है। यहाँ पर अस्तित्व का एक भिन्न तात्पर्य है। उदाहरण के लिए 'बढ़ना' एक शब्द है इसे भिन्न-भिन्न संदर्भ में अलग प्रकार से लिया जा सकता है 'बाढ़ के पानी का बढ़ना' 'जीवन में आशाओं का बढ़ना' 'जनसंख्या का बढ़ना' इत्यादि। कोई इसे व्यांगात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए कह सकते हैं कि इस समय एक तरफ बाढ़ का पानी बढ़ रहा है जीवन की आशाएँ बढ़ रही हैं एवं जनसंख्या बढ़ रही है।'

राइल कहते हैं कि 'मन' को समझने के लिए किसी रहस्यात्मक गुप्त तत्व की आवश्यकता नहीं है। मानसिक व्यवहार न तो किसी प्रेत द्वारा संचालित होता है और न ही वह स्वयं प्रेततुल्य है। मन स्ववृत्ति या (Dispositions) हैं। स्ववृत्ति सरल एवं जटिल दोनों प्रकार की हो सकती है। मन को राइल स्ववृत्ति एवं एक आदत के रूप में स्पष्ट करते हैं। राइल पर व्यवहारवाद का प्रभाव रहा एवं इस प्रभाव के कारण उनकी मान्यता है कि मानसिक प्रक्रिया और आचरण में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं है। समस्त मानसिक प्रपंच स्ववृत्ति है विचार एवं मूल प्रवृत्ति के भेद को राइल स्ववृत्ति का भेद मानते हैं। विचार एवं मूल प्रवृत्ति आदत एवं प्रेरणा, अभीप्सा भावना एवं संकल्प एक दूसरे से केवल उनके स्वरूप के कारण भिन्न नहीं है अपितु वे जटिल स्ववृत्ति के कारण एक दूसरे से भिन्न हैं। राइल मन को अस्वीकार नहीं करते हैं अपनी पुस्तक 'द कॉनसेप्ट ऑफ माइण्ड' के पाँचवें अध्याय में 'मन' के संबंध में उन्होंने कहा है कि मन केवल स्ववृत्ति है। 'मन' एक व्यवहार है एवं इस अर्थ में इसमें कुछ गोपनीय नहीं है। यह सार्वजनिक है। मेरे स्वयं के व्यवहार का अवलोकन कर जैसे हम स्वयं अपने मन को जानते हैं वैसे ही दूसरे के व्यवहार का अवलोकन कर उनके मन को जानते हैं। राइल स्ववृत्ति को एक क्षमता, प्रवृत्ति, उत्तरदायित्व, स्वभाव, क्रिया प्रतिक्रिया का होना या क्रिया प्रतिक्रिया का न होना, किसी विशेष. परिस्थिति में किसी विशेष प्रकार से क्रिया-प्रतिक्रिया का होना या न होना मानते हैं।

चेतना को दर्शन में कई अर्थों में लिया गया है। देकार्त चेतना को एक प्रकाश के रूप में अभिव्यक्त करते हैं ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार परम्परावादी धर्मावलम्बी चेतना को ईश्वर दत्त प्रकाश के रूप में मानते थे, जो मानव को पाप, पुण्य एवं सद्गुण के संबंध में अवगत कराता है। इस प्रकार के चेतना के मत को राइल 'काल्पनिक चेतना' की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार द्वैतवादी दार्शनिक कोटिदोष से ग्रसित तब होते हैं जब वे दो ऐसे पदों को जो भिन्न अर्थ रखते हैं उन्हें एक ही कोटि के अन्तर्गत स्वीकार कर लेते हैं जहाँ पर वह स्वीकार योग्य नहीं है। राइल 'मन' को अस्वीकार नहीं करते हैं। उन्होंने मन को अपने ढँग से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार मन स्ववृत्ति है। राइल कहते हैं कि 'ध्यान से पढ़ना' यह वाक्यांश ऐसा लगता है कि दो प्रकार के भौतिक एवं मानसिक व्यवहार

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

के प्रति निर्देश करता है परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। ऐसा स्वीकार करना दोषपूर्ण है क्योंकि यह एक क्रिया है। राइल कहते हैं कि 'टहलते हुए जम्हाई लेना' निश्चित रूप से दो भिन्न क्रियाएँ हैं और एक के बिना भी दूसरी क्रिया की जा सकती है। परन्तु ध्यान से अभ्यास करना यह अलग के सम्भव नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता है कि वह ध्यान का अभ्यास कर रहा है, पढ़ नहीं रहा है। पढ़ना निश्चित रूप से एक शारीरिक क्रिया है, ध्यान यह मन की प्रवृत्ति है। 'मन' राइल के अनुसार एक व्यवहार है एवं इस अर्थ में इसमें कुछ गोपनीय नहीं है, यह सार्वजनिक है। उनके अनुसार जैसे हम अपने व्यवहार का अवलोकन कर अपने मन को जानते हैं वैसे ही दूसरे के व्यवहार का अवलोकन कर उनके मन को जानते हैं। उदाहरण के लिए अ का गुण अ है, कहने का तात्पर्य है कि ब जब स परिस्थिति उत्पन्न होती है तब आदतन या स्वभाव से कुछ करता है।

देकार्त के दर्शन में 'यंत्र के अन्दर प्रेत' के सिद्धान्त का खण्डन करने के लिए राइल ने 'मन' को स्ववृत्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। वे देकार्त के अतिरिक्त ऐसे भी अन्य दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित संकल्पात्मक व्यवहार को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार यह एक मिथक है। उनका कहना है कि दार्शनिक इसे एक पृथक अर्थ में लेकर स्वैच्छा पूर्ण कार्य एवं अनिच्छा पूर्ण कार्य को समझाने की चेष्टा करते हैं। राइल का उद्देश्य व्यक्ति के स्वेच्छा एवं अनिच्छा का दार्शनिक विश्लेषण करना नहीं है परन्तु उनका कहना है कि कुछ दार्शनिकों ने इसकी दार्शनिक व्याख्या करने की चेष्टा की है जो गलत है। अतः उसे स्पष्ट करना अनुचित नहीं होगा। कुछ दार्शनिक संकल्प को एक क्रिया जिसे सम्पादित किया जाता है उस रूप में स्पष्ट करने की चेष्टा करते हैं जो अप्राकृतिक ही प्रतीत होता है। वस्तु स्थिति यह है कि इसे स्पष्ट करने की चेष्टा कोई भी नहीं करता है यहाँ तक कि अधिकारिक सिद्धान्त के साथ जुड़े हुए विचारक भी संकल्प क्या है? इसे स्पष्ट नहीं करते। इसके अतिरिक्त राइल कहते हैं कि इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए कोई भी प्रमाणित प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं होते हैं। संकल्प एवं शरीर के बीच के संबंध को यह सिद्धान्त सही ढँग से स्पष्ट नहीं कर पाता है। इसके बीच जो क्रिया-प्रतिक्रिया है उसे एक ओर ऐसे दार्शनिक अज्ञेय तो नहीं मानते हैं परन्तु दूसरी ओर वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इसे स्पष्ट करना असम्भव है। अन्त में राइल इसे एक उभयतोपाश के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि स्पष्ट रूप से इसका कोई उत्तर बेतुका ही होगा। राइल अपने पुस्तक के अन्त में व्यक्त करते हैं कि उनका एक और उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि जो धारणा स्वीकार की गई है कि मनोविज्ञान मानव मस्तिष्क का सम्पूर्ण आनुभविक अध्ययन करता है या मनस् को मनोवैज्ञानिक शोध के द्वारा ही जाना जा सकता है यह सर्वथा एक गलत धारणा है। उनका यह भी कहना है कि दार्शनिक जिस द्विजगत की चर्चा करते हैं वह मिथक तो है परन्तु वह पूर्ण रूप से मनगढ़न्त उपाख्यान भी

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner